0751CH27

27 शांतिदूत श्रीकृष्ण

शांति की बातचीत करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गए। उनके साथ सात्यकि भी गए थे। रास्ते में कुशस्थल नामक स्थान में वह एक रात विश्राम करने के लिए ठहरे। हस्तिनापुर में जब यह खबर पहुँची कि श्रीकृष्ण पांडवों की ओर से दूत बनकर संधि चर्चा के लिए आ रहे हैं, तो धृतराष्ट्र ने आज्ञा दी कि नगर को खूब सजाया जाए। पुरवासियों ने द्वारिकाधीश के स्वागत की धूमधाम से तैयारियाँ कीं। दु:शासन का भवन दुर्योधन के भवन से अधिक ऊँचा और सुंदर था। इसलिए धृतराष्ट्र ने आज्ञा दी कि उसी भवन में श्रीकृष्ण को ठहराने का प्रबंध किया जाए। श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँच गए। पहले श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के भवन में गए। फिर धृतराष्ट्र से विदा लेकर वह विदुर के भवन में गए। कुंती वहीं कृष्ण की प्रतीक्षा में बैठीं थीं।

श्रीकृष्ण को देखते ही उन्हें अपने पुत्रों का स्मरण हो आया। श्रीकृष्ण ने उन्हें मीठे वचनों से सांत्वना दी और उनसे विदा लेकर दुर्योधन के भवन में गए। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण का शानदार स्वागत किया और उचित आदर-सत्कार करके भोजन का न्यौता दिया। श्रीकृष्ण ने कहा—"राजन्! जिस उद्देश्य को लेकर मैं यहाँ आया हूँ, वह पूरा हो जाए, तब मुझे भोजन का न्यौता देना उचित होगा।" यह कहकर वे विदुर के यहाँ चले गए और वहाँ भोजन करके विश्राम किया।

इसके बाद श्रीकृष्ण और विदुर में आगे के कार्यक्रम के बारे में सलाह हुई। विदुर ने कहा—"उनकी सभा में आपका जाना भी उचित नहीं है।"

दुर्योधनादि के स्वभाव से जो भी परिचित थे, उनका भी यही कहना था कि वे लोग कोई-न-कोई कुचक्र रचकर श्रीकृष्ण के प्राणों तक को हानि पहुँचाने की चेष्टा करेंगे। विदुर की बातें ध्यान से सुनने के बाद श्रीकृष्ण बोले—"मेरे प्राणों की चिंता आप न करें।"

दूसरे दिन सवेरे दुर्योधन और शकुनि ने आकर श्रीकृष्ण से कहा—"महाराज धृतराष्ट्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" इस पर विदुर को साथ लेकर श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के भवन में गए।

वासुदेव के सभा में प्रविष्ट होते ही सभी सभासद उठ खड़े हुए। श्रीकृष्ण ने बड़ों को विधिवत् नमस्कार किया और आसन पर बैठे। राजदूत एवं सम्भ्रांत अतिथि-सा उनका सत्कार किया गया। इसके बाद श्रीकृष्ण उठे और पांडवों की माँग सभा के सामने रखी। फिर वह धृतराष्ट्र की ओर देखकर बोले—"राजन्! पांडव शांतिप्रिय हैं, परंतु साथ ही यह भी समझ लीजिए कि वे युद्ध के लिए भी तैयार हैं। पांडव आपको पिता स्वरूप मानते हैं। ऐसा उपाय करें, जिससे आप भाग्यशाली बनें।"

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—"सभासदो! मैं भी वही चाहता हूँ, जो श्रीकृष्ण को प्रिय है।"

इस पर श्रीकृष्ण दुर्योधन से बोले—"मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि पांडवों को आधा राज्य लौटा दो और उनके साथ संधि कर लो। यदि यह बात स्वीकृत हो गई, तो स्वयं पांडव तुम्हें युवराज और धृतराष्ट्र को महाराज के रूप में सहर्ष स्वीकार कर लेंगे।"

भीष्म और द्रोण ने भी दुर्योधन को बहुत समझाया। फिर भी दुर्योधन ने अपना हठ नहीं छोड़ा। वह श्रीकृष्ण का प्रस्ताव स्वीकार करने पर राज़ी न हुआ। धृतराष्ट्र ने दोबारा पुत्र से आग्रह किया कि श्रीकृष्ण का प्रस्ताव मान ले, नहीं तो कुल का सर्वनाश हो जाएगा। दुर्योधन ने अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने की जो चेष्टा की थी, उससे श्रीकृष्ण को हँसी आ गई। तभी श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को उन सब अत्याचारों का विस्तार से स्मरण दिलाया, जो उसने पांडवों पर किए थे। भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख वृद्धों ने भी श्रीकृष्ण के इस वक्तव्य का समर्थन किया।

यह देखकर दुःशासन क्रुद्ध हो उठा और दुर्योधन से बोला—"भाई, मालूम होता है, ये लोग आपको कैद करके कहीं पांडवों के हवाले न कर दें। इसलिए चलिए, यहाँ से निकल चलें।" इस पर दुर्योधन उठा और अपने भाइयों के साथ सभा से बाहर चला गया।

इसी बीच धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा—"तुम ज़रा गांधारी को सभा में ले आओ। उसकी समझ

बहुत स्पष्ट है और वह दूर की सोच सकती है। हो सकता है, उसकी बातें दुर्योधन मान ले।" यह सुनकर विदुर ने सेवकों को आज्ञा देकर गांधारी को बुला लाने को भेजा। गांधारी भी सभा में आई और धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को भी सभा में फिर से बुलाया। दुर्योधन सभा में लौट आया। क्रोध के कारण उसकी आँखें लाल हो रही थीं। गांधारी ने भी उसे कई तरह से समझाया, परंतु दुर्योधन ये बातें माननेवाला कब था! अपनी माँ को भी उसने मना कर दिया और दोबारा सभा से निकलकर चला गया। बाहर जाकर दुर्योधन ने अपने साथियों के साथ मिलकर एक षड्यंत्र रचा और राजदूत श्रीकृष्ण को पकड़ने का प्रयत्न किया। श्रीकृष्ण ने तो पहले ही से इन बातों की कल्पना कर ली थी। दुर्योधन की यह चेष्टा देखकर वह हँस पड़े। श्रीकृष्ण उठे। सात्यकि और विदुर उनके दोनों ओर हो गए। सब सभासदों से विधिवत् आज्ञा ली। सभा से चलकर सीधे कुंती के पास पहुँचे और उनको सभा का सारा हाल कह सुनाया।

कुंती बोली–"हे कृष्ण! अब तुम्हीं मेरे पुत्रों के रक्षक हो।" श्रीकृष्ण रथ पर आरूढ़ होकर उपप्लव्य की ओर तेज़ी से रवाना हो गए। युद्ध अब अनिवार्य हो गया था। श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर से लौटते ही शांति स्थापना की जो थोड़ी-बहुत आशा थी, वह भी लुप्त हो गई। कुंती को जब पता चला कि कुलनाशी युद्ध छिड़ेगा ही, तो वह बहुत व्याकुल हो गईं।

चिंता के कारण आकुल हो रही कुंती अपने पुत्रों की सुरक्षा का विचार करती हुई गंगा के किनारे पहुँची, जहाँ कर्ण रोज़ संध्या-वंदन किया करता था। मध्याह्न के बाद कर्ण का जप पूरा हुआ, तो उसे यह जानकर असीम आश्चर्य हुआ कि महाराज पांडु की पत्नी और पांडवों की माता कुंती ही उसका उत्तरीय सिर पर लिए खड़ी हैं।

कर्ण ने शिष्टतापूर्वक अभिवादन करके कहा–"आज्ञा दीजिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

कुंती ने गद्गद स्वर में कहा–"कर्ण! यह न समझो कि तुम केवल सूत-पुत्र ही हो। न तो राधा तुम्हारी माँ है, न अधिरथ तुम्हारे पिता। तुमको जानना चाहिए कि राजकुमारी पृथा की कोख से तुम उत्पन्न हुए हो। तुम सूर्य के अंश हो।" थोड़ा सुस्ताने के बाद वह फिर बोली– "बेटा! दुर्योधन के पक्ष में होकर तुम अपने भाइयों से ही शत्रुता कर रहे हो। धृतराष्ट्र के लड़कों के आश्रित रहना तुम्हारे लिए अपमान की बात है। तुम अर्जुन के साथ मिल जाओ, वीरता से लड़ो और राज्य प्राप्त करो। वे भी तुम्हारे अधीन रहेंगे और तुम उनसे घिरे हुए प्रकाशमान होओगे।"

कर्ण माता कुंती का यह अनुरोध सुनकर बोला–"माँ! यदि इस समय मैं दुर्योधन का साथ छोड़कर पांडवों की तरफ़ चला गया, तो लोग मुझे ही कायर कहेंगे। अब, जब युद्ध होना निश्चित हो गया है, तो मैं उनको मझधार में कैसे छोड़ जाऊँ? यह तुम्हारी कैसी सलाह है? आज मेरा कर्तव्य यही है कि मैं पांडवों के विरुद्ध सारी शक्ति लगाकर लड़ूँ। मैं तुमसे असत्य क्यों बोलूँ? मुझे क्षमा कर दो। लेकिन हाँ, तुम्हारी भी बात एकदम व्यर्थ नहीं जाएगी। अब मैं यह करूँगा कि अर्जुन को छोड़कर और किसी पांडव के प्राण नहीं लूँगा। या तो अर्जुन इस युद्ध में काम आएगा, या मैं। दोनों में से एक को तो

मरना ही पड़ेगा। शेष चारों पांडव मुझे चाहे कितना भी तंग करें, मैं उनको नहीं मारूँगा। माँ, तुम्हारे तो पाँच पुत्र हर हालत में रहेंगे, चाहे मैं मर जाऊँ, चाहे अर्जुन। हम दोनों में से एक बचेगा और बाकी चार तो रहेगें ही। तुम चिंता न करो।"

अपने बड़े पुत्र की ये सारी बातें सुनकर माता कुंती का मन बहुत विचलित हुआ, परंतु उन्होंने उसे अपने गले से लगा लिया और बोली–"तुम्हारा कल्याण हो।" कर्ण को इस प्रकार आशीर्वाद देकर कुंती अपने महल में चली आई।